JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue
JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)
An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

सम्राट् मुक्तापीड ललितादित्य एवं कन्नौज नरेश यशोवर्मा युद्ध : राजतरङ्गिणी सन्दर्भ में

शोधार्थी
पूजा ठाकुर
संस्कृत–विभाग
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय
समरहिल, शिमला–171005

शोध–निर्देशक
डॉ॰ लता देवी
सहायक आचार्य
संस्कृत–विभाग
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय
समरहिल, शिमला–171005

सारांश

कल्हण कृत राजतरङ्गिणी संस्कृत साहित्य का अद्वितीय इतिहास ग्रन्थ है। इसमें कश्मीर को अत्यन्त प्राचीन काल से 12वी शताब्दी तक के राजाओं का क्रमबद्ध वर्णन किया है। कल्हण ने राजतरङ्गिणी में मुख्यतः तीन राजवंशों का वर्णन किया है। जिसमें कार्कोट वंश ने इनमं सबसे पहले शासन किया था। दुर्लभवर्धन ने कश्मीर में कार्कोट वंश की स्थापना की। इसी वंश में सबसे शक्तिशाली शासक हुये ललितादित्य।

उपरोक्त अध्ययन के विषय के अन्तर्गत आठवीं शताब्दी के कार्कोट वंशीय शासक मुक्तापीड ललितादित्य की दिग्विजयी यात्रा का प्रारम्भ एवं कन्नौज नरेश के साथ उसके युद्ध का वर्णन किया है। कन्नौज युद्ध तिथि, कन्नौज नरेश तथा कश्मीरी नरेश के मध्य सन्धि और दोबारा युद्ध होना, युद्ध का फल आदि का वर्णन किया है।

अध्ययन का मुख्य उद्देश्य कार्कोट वंशीय शासक मुक्तापीड् की विजय यात्रा एवं उपलब्धियों से अवगत करवाना है और यह बताना है कि हिन्दु राजवंशों के चलते कश्मीर राज्य कितना शक्तिशाली था।

कूट शब्द : ललितादित्य, यशोवर्मा, कन्नौज युद्ध, कश्मीर, कार्कोट वंश।

भूमिका

संस्कृत शब्द का प्रयोग उस भाषा के लिये किया जाता है, जो लगभग चार हजार वर्षों या उससे भी बहुत पहले से भारत में प्रचलित है। संस्कृत भाषा का साहित्य विश्व की किसी भो अन्य भाषा की तुलना में अधिक विस्तृत है। जिसमें संस्कृत भाषा का वैदिक एवं लौकिक साहित्य निहित है। लौकिक साहित्य की अनेक विश्व प्रचलित रचनाओं में कल्हण रचित इतिहास ग्रन्थ राजतरङ्गिणी का अन्यतम स्थान है। राजतरङ्गिणी का विभाजन आठ तरङ्गों एवं 7829 श्लोकों में किया है। महाकवि कल्हण ने राजतरङ्गिणी में अत्यन्त प्राचोन काल से लेकर 12वीं शताब्दी तक कश्मीर के प्रत्येक शासक का यथाक्रमानुसार वर्णन किया है। कल्हण ने राजतरङ्गिणी में मुख्यतः तीन राजवंशो– कार्कोट वंश, उत्पल वंश तथा लोहार वंश का वर्णन किया है। जिनको अधिक ऐतिहासिक माना गया है। कार्कोट वंश उनमें सबसे प्रथम है।

सातवीं शताब्दी के लगभग दुर्लभवर्धन नामक व्यक्ति ने कश्मीर में कार्कोट राजवंश की स्थापना की थी। यह गोनन्द वंश के अन्तिम शासक बालादित्य का एक पदाधिकारी था। दुर्लभवर्धन का विवाह गोनन्द वंश के अन्तिम शासक बालादित्य की पुत्री अनङ्गलेखा से हुआ था। कार्कोट वंश में कुल 15 राजा हुये, इन राजाओं में दुर्लभवर्धन, चन्द्रापीड, ललितादित्य प्रथम और जयापीड प्रथम बड़े प्रतापी राजा हुये।[1] दुर्लभवर्धन और अनङ्गलेखा को दुर्लभक नामक पुत्र प्राप्त हुआ। दुर्लभक (प्रतापादित्य ष्) ने दुर्लभवर्धन के पश्चात् कश्मीर पर शासन किया। दुर्लभक को रानी नरेन्द्र प्रभा से तीन पुत्र रत्नों की प्राप्ति हुई– चन्दापीड, तारापीड और मुक्तापीड।[2] इनमें मुक्तापीड कश्मीर का बहुत शक्तिशाली शासक हुआ।

सम्राट् मुक्तापीड ललितादित्य

मुक्तापीड ललितादित्य राजा प्रतापादित्य.ष को नरेन्द्र प्रभा से प्राप्त सबसे छोटा पुत्र था। मुक्तापीड ललितादित्य को अपने अग्रज तारापीड़ के पश्चात् कश्मीर का राज्य प्राप्त हुआ। यद्यपि विधाता ने उसे प्रादेशिक राजा बनाया था, परन्तु अपनी बुद्धि बल से वह सार्वभौमिक राजा बन

1 विश्व इतिहास कोष, पृ॰ 817

2 तारापीडोऽपि तनयः क्रमात्तस्यामजायत।
अविमुक्तापीडनामा मुक्तापीडो ऽपि भूपतेः।। राजतरङ्गिणी, 40, 42

गया।[1] ललितादित्य के विषय में यह भी वर्णन मिलता है कि उसको कश्मीर वासियों ने गांधार से बुलाकर कश्मीर का शासक बनाया था।[2]

ललितादित्य शासन काल को कश्मीर इतिहास का स्वर्ण युग माना जाता है।[3] कश्मीर में हिन्दु राज चार सहस्र चार सौ वर्षों तक स्थित रहा।[4] सम्राट ललितादित्य विज्येच्छुक शासक था। महाकवि ने राजतरङ्गिणी में उसे हमेशा विजयाभिलाषी एवं नित्यप्रति पृथिवी की परिक्रमा करने वाले भगवान सूर्य के समान बताया है, इस प्रकार कश्मीर नरेश के जीवन का अधिकांश समय विजय यात्राओं में व्यतीत हुआ।[5]

कन्नौज युद्ध

कन्नौज नरेश यशोवर्मा उत्तर भारत का एक शक्तिशाली शासक था। गौडवहो के अनुसार यशोवर्मा ने पौराणिक विश्व विजेता की परिपाटी का अनुकरण करते हुये, अपनो विजय यात्रा की और वर्षा ऋतु के अन्त तक उसकी विजयवाहिनी दिग्विजय के लियें निकल पड़ी थी। उसने मगध, गौड और बंग विजय के द्वारा उत्तरी भारत में सर्वाधिक यश अर्जित कर लिया था और उसका राज्य उत्तर पश्चिम में सम्भवतः कश्मीर तक फैल चुका था।[6]

कश्मीर नरेश का अपने शक्तिशाली पड़ोसी राजा के प्रतिद्वन्द्विता का भाव अंकुरित होना स्वाभाविक था और वह भी अपनी विजयवाहिनी के साथ दिग्विजय के लिए निकल पड़ा। सम्राट ललितादित्य ने अपनी दिग्विजय का शुभारम्भ कन्नौज अभियान के साथ माना जाता है। वायुदेव ने जिस गाधिपुर की कन्याओं को कुड़ा कुबडा बना दिया था, उस नगर में उसने बड़े–बड़े यौद्धा राजाओं को कुबड़ा बना दिया था। उत्तरी भारत पर कश्मीर का यह प्रथम अभियान था, जिसमें दो सबल शक्तियां आमने–सामने थी। दोनों के बीच हुये युद्ध में गाधिपुर (कन्नौज) के यौद्धाओं को ललितादित्य के भय से पीठ दिखाकर अर्थात् युद्ध भूमि से भागने को विवश होना

---

1 राजा श्रीललितादित्य सार्वभौमस्ततोऽभवत्।
प्रादेशिके श्ववरस्त्रष्टुर्विधेर्बुद्धेरगोचरः।। राजतरङ्गिणी, 4.126

2 जोनराजकृत राजतरङ्गिणी, श्लोक 223, पाद टिप्पणी, पृ॰138

3 जयचन्द्र विद्यालंकार, इतिहास प्रवेश, पृ॰ 196

4 श्रीवरकृत राजतरङ्गिणी, उपसंहार, पृ॰ 16

5 क्षिति प्रदक्षिणयतोश्वेरिव महीपतेः।
जिगीषो प्रायशस्त्रस्य यात्रास्येव वयो ययौ। राजतरङ्गिणी, 4.131

6 वाक्पति, गौडवहो, श्लोक, 198

पड़ा। सूर्य जिस प्रकार आद्रिवाहिनी (पहाड़ी नदी) को सुखा देता है उसी प्रकार नरेश ने यशोवर्मा की विशाल वाहिनी सेना को क्षण भर में ही नष्ट कर दिया।[1]

यशोवर्मा का सैन्य बल यद्यपि उससे अधिक था, फिर भी ललितादित्य की सेना अपेक्षाकृत अधिक प्रशिक्षित, युद्धकला विशारद तथा आधुनिक शस्त्रास्त्र से युक्त होने के कारण हावी रही।[2]

कन्नौज नरेश का युद्ध से विमुख होना

राजतरङ्गिणो के अनुसार युद्ध में प्रबल तेजस्वी राजा ललितादित्य के सम्मुख अपने यश को क्षीण होते देखा, तो बुद्धिमान उस राजा ने सूर्य सदृश प्रतापवान राजा से युद्ध में पिछे हट जाना ही ठीक समझा। यशोवर्मा ने ललितादित्य के सामने आत्म समर्पण किया।[3]

सन्धि पत्र

कन्नौज युद्ध मे कश्मीर नरेश ललितादित्य से हारने के पश्चात् कन्नौज नरेश यशोवर्मा ने उससे सन्धि करने का प्रयास किया। युद्ध के पश्चात् जब दोनों शासकों के बीच शान्ति स्थापनार्थ सन्धिपत्र को तैयार किया गया, तो यशोवर्मा द्वारा प्रस्तुत उस सन्धि पत्र में राजनयिक शिष्टता को ध्यान रखते हुए यशोवर्मा का नाम प्रथम एवं ललितादित्य का नाम द्वितीय स्थान पर अंकित देखकर कश्मीर राज्य के सन्धि–विग्रह मन्त्री मित्रशर्मा ने उसका विरोध किया क्योंकि उस मन्त्री के अनुसार उसके स्वामी का नाम द्वितीय स्थान पर अंकित होना तिरस्कार सूचक था।[4] उस राजा के सहायक अधिकारी उससे भी अधिक स्वाभिमानी थे। उस दूर दृष्टा मन्त्री ने देखा की सन्धिपत्र में यशावर्मा का नाम पहले और ललितादित्य का नाम बाद में लिखकर कश्मीर नरेश की गौणता प्रदर्शित की गई है यह बात मित्र शर्मा को अखर गयी।[5] विरमानी भी

---

1 कन्यानां यत्र कुब्जत्वं व्यधाद्गाधिपुरे मरूत।
तत्रैव शंसनीयः स पुंसां चक्रे भयस्पृशाम्।।
यशोवर्माद्रिवाहिन्याः क्षणात्कुर्वन्तिशोषणम्।
नृपतिर्ललितादित्यः प्रतापादित्यतां ययौ। राजतरङ्गिणी, 4.133, 134

2 मदन लाल विरमानी, दिग्विजयी सम्राट ललिदित्य मुक्तापीड, पृ॰ 26

3 मतिमान्कान्यकुब्जेन्द्रः प्रत्यभात्कृत्यवेदिनाम्।
दीप्तं यल्ललितादित्यं पृष्ठं दत्त्वा न्यषेवत।। राजतरङ्गिणी, 4.135

4 तत्सहायास्ततोऽप्यासन्निकाममभिमानिनः।
कसुमाकरताऽप्युच्चैः सुरभिश्चन्दनानिलः।।
श्रीयशोवर्मणः संधौ सांधिविग्रहिको न यत्।
न यं नियम लेखे मित्रशर्माऽस्य चक्षमे।।
सोऽभूत्संधिर्यशोवर्म ललितादित्ययोरिति।
लिखिते नादिनिर्देशादनर्हत्वं विदन्प्रभोः।। युगलकम्।। राजतरङ्गिणी, 4.136–138

5 सुदीर्घविग्रहाशान्तैः सेनानीभिरसूयिताम्।
औचित्यापेक्षतां तस्य क्षितिभृदृहवमन्यत।। वही, 4.139

लिखते हैं कि यशोवर्मा ने जब अपने को असहाय देखा तो उसने नीतिमता से काम लेना उचित समझा और ललितादित्य से सन्धि करना हो ठीक लगा।[1]

युद्ध तिथि

स्तीन् ने राजतरङ्गिणी की अपनी विद्वता पूर्ण भूमिका में यह मत्त दिया है कि लगभग 736 ई॰ के राज दरबार में भेजे गये ललितादित्य के दूत मण्डल ने यशोवर्मा को अपने सम्राट का मित्र होने का दाबा किया है। अतः ललितादित्य एवं यशोवर्मा का युद्ध का समय चीनी दरबार में भेजे गये इस दूत मण्डल की तिथि के बाद होना चाहिए।[2] स्मिथ ने इनके युद्ध की तिथि 740–741 ई॰ के आसपास मानी है।[3] परन्तु यह युद्ध की तिथि न तो सही जान पड़ती है, न ही यह सही जान पड़ता है कि इस युद्ध में यशोवर्मा मारा गया होगा। इसके विपरीत इस विषय पर वाक्पति राजकृत गौड़वहो ग्रन्थ का आन्तरिक साक्ष्य अधिक युक्ति संगत एवं निर्णयात्मक जान पड़ता है। इनमें कुछ उन अपशकुनों का उल्लेख किया गया है, जो उस समय पर घटित हुई जब राजपद के क्षणिक विचलन के कारण यशोवर्मा की आंखों का कोना आकुंचित हो उठा।[4] त्रिपाठी ने तर्क सहित विचार करने के बाद निश्चित युद्ध की तिथि 14 अगस्त सन् 733 ई॰ रखती है।[5]

उत्तरी तट से कालिका तट तक कस्यकुब्ज देश का एकछत्र राज

कल्हण ने राजतरङ्गिणी में वर्णन किया है कि युद्ध में यशोवर्मा को पराजित करने के पश्चात् कश्मीर नरेश का यमुना नदी के उत्तरी तट से लेकर कालिका तट (काली नदी के तट) तक जो भी क्षेत्र कन्नौज राज्य के अधीन आता था, उसके अधिकार क्षेत्र में आ गया और वह सारा क्षेत्र उस राजा के लिये घर आंगन के समान सुगम्य हो गया था।[6] ललितादित्य का कन्नौज राज्य के केवल उस भाग पर ही उसका अधिकार था, जो यमुना और काली नदियों के बीच स्थित था, परन्तु कान्यकुब्ज का साम्राज्य इससे कही अधिक विस्तृत था।[7]

---

1 मदन लाल विरमानी, दिग्विजयी सम्राट ललितादित्य मुक्तापीड, पृ॰ 26
2 एम॰ए॰ स्टीन, राजतरङ्गिणी, पृ॰ 89
3 बी॰ए॰ स्मिथ, अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ॰ 392
4 वाक्पतिकृत्, गौडवहो, श्लोक, 727–731
5 रमाशंकर त्रिपाठी, हिस्ट्री ऑफ कन्नौज, पृ॰ 204, 205
6 किमन्यत्कान्यकुब्जोर्वी यमुना पारतोऽस्य सा।
अभूदाकालिकातीरं गृहप्राङ्गणवद्वशे।। राजतरङ्गिणी, 4.14
7 रामवृक्ष सिंह, गुप्तोतर कालीन राजवंश, पृ॰ 354

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप से कह सकते है कि सम्राट ललितादित्य कार्कोट राजवंश का सबसे शक्तिशाली राजा हुआ। उसने अपने शासन काल में कश्मीर की सीमाओं को चीन तक बढ़ाया। उसने तिब्बतियों, कम्बोजों एवं तुर्कों को पराजित किया। उसकी श्रेष्ठ उपलब्धियों में कन्नौज विजय सबसे प्रमुख है। मध्यकाल में उत्तर भारत के सबसे शक्तिशाली राजा यशोवर्मा के साथ 733 ई॰ लगभग उसका युद्ध हुआ और कश्मीरी नरेश इस युद्ध में विजयी रहा। धार्मिक दृष्टि से उदार होने के कारण उसने बौद्ध मठों एवं हिन्दु मन्दिरों का निर्माण भी करवाया। उसके महत्वपूर्ण निर्माण कार्यों में सूर्य का प्रसिद्ध मार्तण्ड मन्दिर शामिल है। उसका शासन काल का कश्मीर का स्वर्णयुग कहा गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. इतिहास प्रवेश : लेखक, जयचन्द विद्यालंकार, प्रकाशक : सरस्वती प्रकाशन मन्दिर इलाहाबाद।
2. गुप्तोतर कालीन राजवंश : लेखक, डॉ॰ रामवृक्ष सिंह प्रकाशक :विनोद चन्द्र पाण्डेय निदेशन उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ।
3. जोनराजकृत राजरतङ्गिणी : भाष्यकार, डॉ॰ रघुनाथ सिंह प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस वाराणसी।
4. दिग्विजयी सम्राट् ललितादित्य मुक्तापीड् : लेखक, मदनलाल विरमानी, प्रकाशक : लोकहित प्रकाशन संस्कृत भवन राजेन्द्र नगर लखनऊ।
5. विश्व इतिहास कोश (भाग 1) : लेखक, चन्द्रराज भंडारी प्रकाशक : ज्ञान मन्दिर प्रकाशन मानपुरा (मध्यप्रदेश)।
6. श्रीकल्हणमहाकविविरचिता राजतरङ्गिणी : अनुवादक, पाण्डेय रामतेज शास्त्री, प्रकाशक : पण्डित पुस्तकालय काशी.1960।
7. श्रीवरकृत् जैनराजतरङ्गिणी : अनुवादक, डॉ॰ रघुनाथ सिंह, प्रकाशक : चौखम्बा अमर भारती प्रकाशन वाराणसी।

आंग्ल ग्रन्थ

1. Early History of India: By, V.A. Smith, Publisher: Oxford at the Clarendon Press.

2. History of Kannauj: By, Rama Shankar Tripathi, Publisher: Motilal Banarsi Das Varanasi.

3. Kalhana Rajatarangini (Vol.-I): By, M.A. Stain Publisher: Westminster: Archibald Constable and Company Ltd.